जार्ज एडवर्ड मूर

(George Edward Moore, 1873-1958)

जीवन-वृत्त—जॉर्ज एडवर्ड मूर का जन्म 1873 में हुआ था और उनकी मृत्यु 1958 में हुई। वे बर्ट्रण्ड रसॅल से अवस्था में एक वर्ष छोटे थे। प्रथम उनकी शिक्षा डलविच (Dulwich) कालेज में हुई तथा बाद में छात्रवृत्ति के साथ उनका प्रवेश ट्रिनिटी कालेज

कैम्ब्रिज में हुआ। प्रारम्भ में मूर की अभिरुचि प्राचीन उच्च साहित्य (Classics) में थी पर रसॅल के समझाने पर वे दर्शन-शास्त्र की ओर आकर्षित हुए। 1898 ई० में वे ट्रिनिटी कालेज के पार्षद चुने गए। 1911 में मूर कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र के प्रवक्ता नियुक्त किए गए तथा 1925 में जेम्स वार्ड के अवकाश-ग्रहण के बाद वे वहीं दर्शन-शास्त्र के आचार्य (Professor) नियुक्त हुए। उन्होंने 1921 से लेकर 1947 तक ब्रिटेन की सुप्रसिद्ध पत्रिका माइण्ड (Mind) का सम्पादन किया।

रचनाएँ—मूर की सुप्रसिद्ध रचनाएँ तथा उनकी रचना का काल निम्नलिखित है। 1. प्रिंसिपिया एथिका (Principia Ethica) 1903 ; 2. दार्शनिक अध्ययन (Philosophical Studies) 1922 ; 3. दर्शन की कुछ प्रमुख समस्याएँ (Some Main Problems of Philosophy) 1953) ; 4. दार्शनिक पत्र (Philosophical Papers) 1959 इत्यादि।

विज्ञानवाद का खण्डन (The Refutation of Idealism)

मूर ने ज्ञानमीमांसीय विज्ञानवाद का खण्डन अपने सुप्रसिद्ध लेख **"विज्ञानवाद का खण्डन"** (The Refutation of Idealism) में प्रदर्शित करने की चेष्टा की है जो सर्वप्रथम 1903 में **"माइण्ड"** (Mind) पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। इसका वर्णन संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है।

'सत्ता दृश्यता है' वाक्य में संयोजक "है" को तीन विभिन्न अर्थों में लिया जा सकता है। **"है" के भिन्न-भिन्न अर्थों** के साथ 'सत्ता दृश्यता है' वाक्य के भी तीन भिन्न-भिन्न अर्थ निष्कर्षित होंगे जो निम्न हैं—

(i) प्रथम अर्थ में संयोजक "है" का तात्पर्य उद्देश्य और विधेय का **पूर्ण तादात्म्य** है। ऐसी स्थिति में 'सत्ता दृश्यता है' वाक्य "सत्ता" की परिभाषा के रूप में परिणत हो जायगा जिसमें "सत्ता" परिभाष्य पद है तथा "दृश्यता" परिभाषक पद है जो बिलकुल ही अनुपयुक्त होगा। "है" को पूर्ण तादात्म्य के रूप में लेने का एक दुष्परिणाम यह होगा कि उपर्युक्त वाक्य एक द्विरुक्ति (Tautology) मात्र हो जायगा जो किसी सिद्धान्त की पुष्टि नहीं कर सकता। अतः, "है" का प्रथम अर्थ विज्ञानवाद की सिद्धि करने में पूर्णतः अक्षम है।

(ii) यदि 'सत्ता दृश्यता है' में "है" का अर्थ **अपूर्ण तादात्म्य** से लिया जाय तो भी विज्ञानवाद की सिद्धि नहीं हो सकती। अपूर्ण तादात्म्य का यहाँ तात्पर्य यह है कि विधेय "दृश्यता" का गुणार्थ उद्देश्य "सत्ता" के गुणार्थ का केवल एक अंश ही है। उदाहरण के लिए 'मनुष्य एक जानवर है' में विधेय "जानवर" उद्देश्य "मनुष्य" का केवल एक भाग है। जिस प्रकार किसी जीव के "जानवर" होने से उसका "मनुष्य" होना सिद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि "मनुष्य" "जानवर" से कहीं अधिक है, उसी प्रकार "दृश्यता" से "सत्ता" की सिद्धि नहीं की जा सकती क्योंकि "सत्ता" "दृश्यता" से कहीं अधिक है। यदि "सत्ता" "दृश्यता" से कहीं अधिक है तो यह विज्ञानवाद को सिद्ध न कर वस्तुवाद को ही सिद्ध करता है।

(iii) यदि "सत्ता दृश्यता है' में "है" का तात्पर्य न तो पूर्ण तादात्म्य है और न अपूर्ण तादात्म्य तो तृतीय विकल्प के रूप में "है" का अर्थ "अपृथक्सिद्ध" सम्बन्ध से लिया जा सकता है। पर इससे भी विज्ञानवाद की सिद्धि नहीं की जा सकती। अपृथक्सिद्ध सम्बन्ध का

अर्थ यह है कि यद्यपि "सत्ता" और "दृश्यता" एक दूसरे से सुभिन्न वस्तुएँ हैं पर फिर भी उनके बीच अवियोजनीय सम्बन्ध पाया जाता है। पर मूर को "है" का यह अर्थ भी स्वीकार्य नहीं है क्योंकि "है" के इस अर्थ से 'सत्ता दृश्यता है' वाक्य को संश्लेषणात्मक (Synthetic) और अनिवार्य (Necessary) दोनों मानना पड़ेगा जो सम्भव नहीं है।

उपर्युक्त विश्लेषण से मूर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बर्कले का 'सत्ता दृश्यता है' वाला सिद्धान्त ज्ञानमीमांसीय विज्ञानवाद की स्थापना करने में बिलकुल असमर्थ है।

मूर ने बर्कले के 'सत्ता दृश्यता है' के सिद्धान्त का खण्डन करने के लिए तार्किक युक्ति के साथ एक ज्ञानमीमांसीय युक्ति भी दी है जिसका सारांश निम्न है—(i) हम जानते हैं कि "नीले की संवेदना" और "हरे की संवेदना" में अन्तर है। यह अन्तर उनके विषयों (नीला और हरा) के अन्तर के कारण है न कि संवेदना के कारण जो कि दोनों में समान रूप में निष्ठ है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रत्येक संवेदना में कम-से-कम दो तत्त्व अवश्य पाए जाते हैं—

(i) **संचेतना** जो समान रूप में सभी संवेदनाओं में पाई जाती है और (ii) **विषय** जिसके कारण एक संवेदना दूसरी संवेदना से भिन्न होती है। ऐसी स्थिति में यदि विज्ञानवादी "नील" और उसकी संवेदना के बीच तादात्म्य स्थापित करता है तो वह किसी समूह के एक भाग को उसके दूसरे भाग के साथ तादात्म्य स्थापित करने के दोष का भागी बनता है। किन्तु यदि विज्ञानवादी कहता है कि "नीला" का तादात्म्य "संवेदना" के साथ नहीं वरन् नीला का तादात्म्य "नीला की संवेदना" के साथ कर रहा है तो इसके उत्तर में मूर कहेंगे कि ऐसी स्थिति में वह किसी समूह के एक भाग को सम्पूर्ण समूह के साथ तादात्म्य स्थापित करने के दोष का भागी बनता है।

(ii) विज्ञानवादी अपनी बात के समर्थन में कह सकता है कि वह "नीला" और "नीला की संवेदना" के बीच तादात्म्य स्थापित नहीं करता। उसके कथन का केवल यही तात्पर्य है कि नीले को नीले की संवेदना से पृथक् नहीं किया जा सकता। इसके उत्तर में मूर कहेंगे कि **ज्ञान का विषय** (Object) और ज्ञान का **अन्तर्विषय** (Content) एक ही नहीं होता। जब ज्ञान में हमें नीले की संवेदना होती है तो नीला हमारे ज्ञान का केवल विषय होता है, वह अन्तर्विषय नहीं होता। नील "नील कमल" का अन्तर्विषय भले ही हो वह हमारी संवेदना का अन्तर्विषय कभी नहीं होता। इन दोनों के बीच भेद न करने के कारण ही बर्कले ने "सत्ता दृश्यता है" के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

(iii) कुछ लोगों के अनुसार किसी वस्तु के ज्ञान का तात्पर्य उस वस्तु प्रतिमा (Image) के ज्ञान से है जो सदा आत्मा पर आश्रित होता है। पर मूर के अनुसार किसी वस्तु के ज्ञान और उसकी प्रतिमा के ज्ञान में पर्याप्त अन्तर है। जब हमें शेर का ज्ञान होता है तो वह शेर का ज्ञान है, उसकी प्रतिमा का नहीं, अन्यथा कोई शेर से डरता ही क्यों ? अतः विज्ञानवाद त्रुटिपूर्ण है।